सुदूर दक्षिण भारत में पाषाण युग के पश्चात महापाषाण संस्कृतियों (Megaliths) का उदय हुआ। इस संस्कृति के अनेक कब्रगाह मिले हैं। इन कब्रगाहों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया हैं—कक्षयुक्त कब्र, कक्षविहीन कब्र तथा कब्रविहीन स्मारक। इस संस्कृति के लोग लोहे से प्रयोग के परिचित थे तथा काले और लाल रंग के मिट्टी के बर्तन व्यवहार में लाते थे। वे कृषि और सिंचाई से भी परिचित थे। मुरूगन उनका प्रमुख देवता था। कालांतर में अनेक महापाषाणकालीन स्थल, उत्तर भारत के संपर्क में आकर ग्राम और नगरों के रूप में विकसित हुए तथा सुदूर दक्षिण में शक्तिशाली राज्यों के उदय और विकास को संभव बनाया। यही कारण है कि महापाषाणकालीन संस्कृति के अनेक तत्वों का उल्लेख संगम साहित्य में देखने को मिलता है। संगम साहित्य में सुदूर दक्षिण के तीन शक्तिशाली राज्यों, चेर, पांड्य एवं चोल के आरंभिक इतिहास एवं उस समय की संस्कृति का उल्लेख मिलता है। मेगास्थनीज के विवरण, अशोक के अभिलेख तथा कलिंग नरेश खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में भी इनका उल्लेख मिलता है, परंतु इनके विषय में विस्तृत जानकारी संगम साहित्य से ही मिलती है।

3.1. संगम साहित्य *(The Sangam Literature)*

संगम साहित्य की रचना कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के दक्षिण के भू-भाग में स्थित प्राचीन तमिलकम प्रदेश में हुई। इनके विकास में चेर, पांड्य एवं चोल राज्यों का योगदान माना जा सकता है। संगम साहित्य तमिल भाषा का प्राचीनतम अंश (साहित्य) माना गया है। संगम साहित्य की रचना की वास्तविक तिथि विवादास्पद है। इस साहित्य में वर्णित परंपराओं एवं अनुश्रुतियों के आधार पर यह साहित्य अत्यंत प्राचीन प्रतीत होता है, परंतु इस पर विश्वास करना कठिन है। अनेक विद्वान इस साहित्य की तिथि ईसा की प्रथम चार शताब्दी या पाँचवीं शताब्दी तक मानते हैं। सामान्यतः इस साहित्य का विकास ईसा की प्रथम शताब्दी से तीसरी शताब्दी (100-250 ई०) माना जाता है।

प्रथम संगम—संगम साहित्य से जिस साहित्य का बोध होता है वह है तमिल कवियों के संघ, मंडल, परिषद अथवा सम्मेलन में रचित साहित्य। इस संगम का गठन पांड्यों के संरक्षण में उनकी राजधानी मदुरा में हुआ था। कवियों के तीन संगमों का उल्लेख मिलता है। प्रथम संगम पांड्य शासकों की संरक्षकता में मदुरा में हुआ। इस संगम के अध्यक्ष अगस्तय ऋषि थे जिन्होंने दक्षिण भारत में आर्य संस्कृति का प्रसार किया। इस संगम में 549 विद्वानों ने भाग लिया। प्रथम संगम को 89 पांड्य शासकों का संरक्षण प्राप्त हुआ था। इस संगम के कार्यकाल में 4,499 विद्वानों को अपनी रचनाएँ प्रकाशित करने की अनुमति दी गई थी। यह संगम 4,400 वर्षों तक चला। इसमें रचित प्रमुख ग्रंथ है **अक्कतियम, परिपदल, मुदुनरै** इत्यादि। इनमें कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। मदुरा नगर के समुद्र में विलीन हो जाने के कारण प्रथम संगम समाप्त हो गया। इस संगम के सदस्यों में प्रमुख थे तिरिपुरनेरिथ, मुरूगवल तथा मुदिनागरायर।

द्वितीय संगम—मदुरा के पतन के पश्चात पांड्य राजाओं के संरक्षण में दूसरा संगम नए नगर कपाटपुरम अथवा अलैवे में अयोजित किया गया। इस संगम के भी अध्यक्ष आरंभ में

अगस्त्य ही थे। बाद में उनका स्थान उनके शिष्य तोलकप्पियर ने लिया। इस संगम में तमिल भाषा के 49 विद्वानों ने भाग लिया। द्वितीय संगम को 59 पांड्य शासकों ने संरक्षण प्रदान किया। इस संगम में 3700 कवियों को अपनी रचना प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की गई। दूसरा संगम करीब 3700 वर्षों तक चला। इस संगम के दौरान जिन ग्रंथों की रचना हुई उनमें **अकत्तियम, मापुरानम, भूतपुरानम, व्यालमलय, तोल्कापियम** इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनमें सबसे अधिक विख्यात तमिल व्याकरण की पुस्तक **तोल्कापियम** है। इस ग्रंथ की रचना ऋषि अगस्त्य के एक शिष्य तोल्कापियर ने की थी। द्वितीय संगम के प्रमुख सदस्यों में कुरूनगोलिमोसी तथा वेल्लूर काप्पियन का उल्लेख किया जा सकता है।

तृतीय संगम—द्वितीय संगम की समाप्ति तक कपाटपुरम भी समुद्र में चला गया। अतः तृतीय संगम पुनः उत्तरी मदुरा में आयोजित किया गया। इस संगम की कार्यावधि 1850 वर्ष मानी गई है। इस संगम में 49 विद्वानों ने भाग लिया। इस संगम को भी 49 पांड्य शासकों का संरक्षण प्राप्त हुआ। इस सभा की अध्यक्षता नक्कीरर ने की। तृतीय संगम के अन्य प्रमुख विद्वान थे इरैयनार, कपिलर और पांड्य शासक उग्र। इस संगम ने 449 कवियों को अपने ग्रंथों के प्रकाशन की अनुमति दी। इस संगम की रचनाओं में प्रमुख हैं **नेडुण्थोकै, कुरून्थोकै, पदिलुटपत्तु, परिपादल** इत्यादि। इस संगम के भी अधिकांश ग्रंथ नष्ट हो गए हैं तथापि जो संगम साहित्य अभी उपलब्ध है वह इसी तीसरे संगम की रचना मानी जाती है।

इन तीनों संगमों का उल्लेख 8वीं शताब्दी के ग्रंथ **इरैयनार अग्गपोरूल** में हुआ है। इसके अनुसार तीनों संगम 9,990 वर्ष तक चले। इनमें 8,598 कवियों ने साहित्यिक रचनाएँ की तथा 197 पांड्य शासकों ने इन संगमों को संरक्षकता प्रदान की। यह विवरण कपोलकल्पित प्रतीत होता है। इस पर पूरी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता है। यह विवरण संगम साहित्य को प्राचीनता प्रदान करने के लिए दिया गया है। इस विवरण में ऐतिहासिक तथ्यों से अधिक कल्पना का सहारा लिया गया है।

उपलब्ध संगम साहित्य—उपलब्ध संगम साहित्य के रचनाओं की संख्या करीब 2289 है। इनमें कुछ बड़ी, कुछ छोटी कविताएँ तथा कुछ काव्य भी हैं। इनकी रचना का श्रेय करीब 473 कवियों को, जिनमें कुछ कवित्रियाँ भी हैं, दिया जाता है। उपलब्ध संगम साहित्य में निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख किया जा सकता है—तमिल व्याकरण ग्रंथ **तोल्कापियम, एत्तुतोकै** अथवा **आठ संग्रह, पत्तुपात्तु** अथवा **दस गीत, पदिनेंकिलकण्क्कु** अथवा **अठारह लघु गीत** और **महाकाव्य**।

तोल्काप्पियम *(Tolkappiyam)* तमिल व्याकरण पर एक विस्तृत ग्रंथ है। इसकी रचना सूत्र शैली में हुई है। यह ग्रंथ तीन खंडों में विभक्त है जिसमें वर्ण विचार, व्युत्पत्ति तथा पदार्थ का वर्णन है। व्याकरण के अतिरिक्त इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष संबंधी बातें भी उल्लिखित हैं। इसके रचनाकार तोल्कापियर ऋषि अगस्त्य के बारह शिष्यों में से एक थे। इस ग्रंथ पर बाद में अनेक टीकाएँ लिखी गईं।

एत्तुतोकै के अंतर्गत आठ संकलित ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है। ये ग्रंथ हैं **नरिणई** *(Narrinai)*, **कुरून्दोगई** *(Kurundogai)*, **एंगरून्नरू** *(Aingurunuru)*, **पदिरूप्पत्तु** *(Paddirru-ppatu)*, **परिपादल** *(Paripadal)*, **कलित्तोगई** *(Kalittogai)*, **अहनानुरू** *(Ahnanuru)* तथा **पुरनानुरू** *(Purananuru)*। इन ग्रंथों में प्रेमविषयक बातों के अतिरिक्त तमिल प्रदेश की भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक जीवन की अनेक विशेषताएँ तथा कुछ राजनीतिक महत्त्व के विषयों का भी विवेचन किया गया है। **पत्तुपात्तु** अथवा दस गीत में भी सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन की झाँकी मिलती है। इन दस गीतों के संकलन में निम्नलिखित का नाम मिलता है—**तिरूमुरू-कात्रुप्पदै, पेरूम्पनत्रुप्पदै, पत्तिनप्पलै, मदुरैकांचि, पोरूनरात्रुप्पदै, मुल्लैप्पातु, सिरूपानात्रुप्पदै, कुरिन्जिप्पातु** तथा **मलैपदुदकाम**। इनमें से अधिकांश गीत चोल और पांड्य शासकों को समर्पित हैं। इन ग्रंथों में कुछ गीत मुरूगन की प्रशंसा में हैं तो कुछ में प्रेम-विरह, ग्राम्य जीवन, विदेशी व्यापार तथा शासकों की प्रशंसा देखी जा सकती है। अठारह लघु गीत अथवा **पदिनेंकिलकण्क्कु** भी विविध विषय से संबद्ध है। इस संग्रह की रचनाओं में उल्लेखनीय। **नलदियर, नन्मणिक्कदैके करनारपथु, इन्नारपथु, कुरल** इत्यादि हैं। इनमें कुछ में चेर-चोल राजनीतिक संघर्ष, युद्धगीत, प्रेमगीत, तथा नीति संबंधी बातें देखी जा सकती हैं।

तमिल साहित्य के अंतर्गत अनेक महाकाव्यों का भी उल्लेख किया जाता है। कुछ विद्वान इन्हें तीन संगमों के बाद की रचना मानते हैं, परंतु इनमें वर्णित जीवन और संगम साहित्य से उपलब्ध सांस्कृतिक जीवन में अनेक समानताएँ पाई जाती हैं। अतः इन्हें भी संगम साहित्य के अंतर्गत रखना ही उचित होगा। तमिल के प्रमुख महाकाव्यों में **शिलप्पदिकारम्** और **मणिमेकलै** हैं। **शिलप्पदिकारम्** से सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, विशेषतया विदेशी व्यापार पर प्रकाश पड़ता है। इसके रचयिता इलांगों आदिगल थे। **मणिमेकलै** से भी सामाजिक जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इसकी रचना सीतलै सत्तनार ने की। संगम साहित्य तत्कालीन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी का अमूल्य स्रोत है।

3.2. संगम साहित्य से ज्ञात राजनीतिक इतिहास *(Political History as Known from the Sangam Literature)*

संगम साहित्य से ज्ञात होता है कि दक्षिण में आर्य सभ्यता के तत्वों का प्रसार ऋषि अगस्त्य ने किया। इस साहित्य में तीन प्रमुख राज्यों चेर, चोल और पांड्य राजाओं के इतिहास की रूपरेखा दी गयी है। इसके अतिरिक्त कुछ छोटे राज्यों अथवा सरदारों का भी उल्लेख मिलता है। संगम कवियों ने तीनों राज्यों की प्राचीनता का उल्लेख **महाभारत** के युद्ध के साथ किया है।

चेर राज्य—संगम साहित्य में वर्णित तीनों राजवंशों में सबसे अधिक राजाओं की सूची चेर (केरल) राजाओं की मिलती है। चेरों का पहला राजा उदियनजेरल था। यद्यपि संगम साहित्य में बताया गया है कि उसने कुरुक्षेत्र (महाभारत) के युद्ध में भाग लेने वाले सैनिकों को पेट भर कर भोजन करवाया तथा अपने लिए भोजन कराने वाले उदियनजेरल (Udiyanjeral of the great feeding) की उपाधि प्राप्त की, उसका संभावितकाल 103 ई० है। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र नेदुनजेरल आदन था। उसकी राजधानी मरन्दै थी। आदन नें मालाबार तट पर किसी स्थानीय शत्रु को नौसैनिक युद्ध में पराजित किया। उसने अनेक यवन व्यापारियों को बंदी भी बना लिया तथा उनसे एक बड़ी धनराशि ले कर उन्हें मुक्त किया। उसे अनेक युद्धों में भाग लेते हुए तथा अपने जीवन का एक बड़ा भाग सैनिक शिविरों में व्यतीत करते हुए बताया गया है। कहा जाता है कि उसने सात अभिषिक्त राजाओं को पराजित कर **अधिराज** की श्रेणी प्राप्त की। वह **इमयवरम्बन** (Imayavaramban), अर्थात जिसकी सीमा हिमालय तक हो, कहा जाता था। यह भी कहा गया है कि उसने समस्त भारत पर विजय प्राप्त की तथा हिमालय पर चेर राज्य का चिह्न (धनुष) अंकित किया, परंतु कवि की यह कपोलकप्लना है। आदन ने अपने समकालीन चोल शासक से भी युद्ध किया। इसमें चेर-चोल दोनों शासकों की मृत्यु हुई तथा उनकी रानियों ने सतीधर्म का पालन किया।

नेदुनजेरल आदन का भाई कुट्टुवन 'अनेक हाथियों वाला' बताया गया है। उसने कोन्गु के युद्ध में विजय प्राप्त की तथा चेर राज्य का विस्तार पश्चिमी से पूर्वी समुद्र तट तक किया। आदन के दो पुत्र थे। पहला पुत्र 'चेर कलंगै' के नाम से विख्यात था। उसने तगदुर के अदिगैमान सरदार आंजी को पराजित किया तथा तुलू देश में (मालाबार के उत्तर) नन्नान के विरुद्ध सैनिक अभियान किए। वह भी अधिराज था और सात मुकुटों की माला पहनता था। आदन का दूसरा पुत्र, जिसकी संभावित तिथि 180 ई० है, शेनगुट्टुवन था। वह एक वीर और साहसी योद्धा था। यह घुड़सवारी, हाथी की सवारी तथा दुर्ग की घेराबंदी करने में दक्ष था। उसके पास एक शक्तिशाली जलबेड़ा था जिसकी सहायता से उसने अपने शत्रु पर विजय प्राप्त की। उसी के समय में **पत्तिनी पूजा** या 'कण्णगी' (आदर्श पत्नी) की प्रथा तमिल प्रदेश में आरंभ हुई। उसनें संभवतः चोलों के उत्तराधिकार के संघर्ष में भी भाग लिया। **पदिरूप्पतु** में उदियनजेरल वंश के इन पाँच शासकों के नामों का उल्लेख हुआ है। इन लोगों ने 201 वर्षों तक शासन किया। चेर राज्य एक कुल संघ के समान था जिसमें राजपरिवार के सदस्य प्रशासन में भाग लेते थे।

उदियनजेरलवंशी इन शासकों के अतिरिक्त कुछ अन्य समकालीन चेर राजाओं का भी उल्लेख मिलता है। इनमें प्रमुख थे अंदुवन एवं उसका पुत्र शेल्वक्कडुंगोवाली आदन। इन दोनों शासकों की वीरता और उदारता की प्रशंसा संगम कवियों ने की है। पिता एक विद्वान था

तथा उसका पुत्र धार्मिक अभिरुचियों वाला जिसने अनेक यज्ञ करवाए। अन्य समकालीन छोटे शासकों या सरदारों (वेल-Vel) में आय और पारि, का विशेष रूप से उल्लेख कवियों ने किया है। नीलकंठ शास्त्री आय को कोई व्यक्तिगत सरदार नहीं मानते हैं, बल्कि इसे एक वंश मानते हैं। वेल अपना संबंध अगस्त्य और विष्णु से जोड़ते हैं। आय को व्यक्ति और वंश दोनों रूप में प्रस्तुत किया गया है। आय तमिल प्रांत के विभिन्न भागों पर शासन करते थे। एक आय ने उरैयुर के एक ब्राह्मण कवि को उदारतापूर्वक दान दिया। पारी कपिलार नामक कवि का मित्र और संरक्षक था। 190 ई० में दो चेर राजाओं का नाम मिलता है। पेरूनजेरल इरपोरई आदन का पुत्र था (संभवतः शेल्वक्कडुंगोंवाली आदन का पुत्र)। उसने सलेम जिला में धर्मपुरी के सरदार को परास्त किया। वह विद्वान और धार्मिक प्रवृत्ति का था। इरपोरई का एक अन्य प्रतिद्वंद्वी अदिगैमान या नदुमान अंजि था। उसने अनेक यज्ञ किए। उसी ने दक्षिण में ईख की खेती आरंभ करवाई। नदुमान ने पांड्य और चोल राजाओं की सहायता से चेर शासक को पराजित करने का प्रयास किया परंतु अंततः उसे चेर राजा की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। चेर वंश का अंतिम ज्ञात राजा कुड्डको इलनजेराल इरम्पोरई था। उसने संभवतः चोलों और पांड्यों से संघर्ष किया तथा चोल शासक, जो पोट्टी पर शासन करता था, को परास्त कर अनेक दुर्गों पर विजय प्राप्त की। इस विजय अभियान से उसे बहुमूल्य धनराशि प्राप्त हुई जिसे वह अपनी राजधानी वंजी या करूयुर ले आया। एक अन्य चेर राजा शेय था जिसे 'हाथी की आँख वाला' कहा गया है। उसे पांड्य शासक ने पराजित कर दिया परंतु अंत में वह अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने में सफल हुआ।

चोल—चेरों की तरह संगम साहित्य में चोल शासकों का भी उल्लेख मिलता है। चोल शासकों में प्रमुख करिकाल था जिसकी तिथि 190 ई० थी। उसे 'जले हुए पैरों वाला' (The man with the charred leg) कहा गया है। करिकाल एक योग्य, वीर और साहसी शासक था। अपने शासन के आरंभ में उसे गद्दी से हटा कर गिरफ्तार कर लिया गया था; लेकिन वह कैद से निकल भागने और अपनी सत्ता पुनः प्राप्त करने में सफल हुआ। उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की। तंजौर के निकट वेण्णि नामक युद्ध में विजय प्राप्त करने से उसकी ख्याति बढ़ गई। इस युद्ध में उसने ग्यारह राजाओं के समूह को, जिसमें चेर और पांड्य भी थे, पराजित कर दिया। एक दूसरे महत्त्वपूर्ण युद्ध, वाहैप्परंदलई के युद्ध में उसने नौ राजाओं को हराया। उसने तमिल प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। कुछ क्षेत्रों पर उसका प्रत्यक्ष शासन था तो कुछ पर उसके अधीनस्थ शासक शासन करते थे। करिकाल ने सिर्फ राज्य विस्तार की ओर ही अपना ध्यान नहीं दिया, बल्कि उसने आर्थिक विकास के लिए भी प्रयास किए। उसने कृषि, उद्योग-धंधे तथा व्यापार-वाणिज्य के विकास को प्रोत्साहन दिया। उसके समय में कावेरीपतनम उद्योग और व्यापार का केंद्र बन गया। कृषि के विस्तार के लिए जंगलों की कटाई की गई तथा सिंचाई के लिए नए तालाब खुदवाए गए। करिकाल ने अनेक वैदिक यज्ञ भी किए। वह लंबे समय तक शांति और कुशलतापूर्वक शासन करता रहा। करिकाल से संबद्ध अनेक जनश्रुतियाँ **शिलप्पदिकारम्** तथा 11-12वीं शताब्दी के अभिलेखों में मिलती हैं। उसका समकालीन कांचीपुरम का राजा तोण्डैमान इलन्दिरैमन था।

करिकाल के पश्चात चोलों में सत्ता पर अधिकार करने के लिए गृहयुद्ध आरंभ हुआ। यह एक लंबा युद्ध प्रतीत होता है। कोवुर किलार और अन्य कवियों ने इसका वर्णन किया है। यह युद्ध नलन्गिल्ली और नेदुन्गिल्ली के मध्य हुआ। इस गृह युद्ध ने चोलों की शक्ति कमजोर कर दी। बाद के दो अन्य चोल शासकों का भी नाम मिलता है। वे थे इल्नजेतचेल्ली तथा शेंगनान्। शेंगनान् ने पोर के युद्ध में चेर राजा कण्णिकाल इरूमपोरई को पराजित किया था। वह शिव का भक्त था। उसने करीब 70 शिवमंदिर बनवाए। नीलकंठ शास्त्री के अनुसार शेंगनान् संभवत चौथी या पांचवीं शताब्दी में हुआ।

पांड्य—संगम साहित्य में वर्णित पांड्य राजाओं में पहला नाम नेडियोन का आता है। इसी ने पहरूली नदी बनाई तथा समुद्र की पूजा की प्रथा आरंभ करवाई, परंतु इस राजा की ऐतिहासिकता संदिग्ध मानी जाती है। पहला ऐतिहासिक पांड्य राजा पल्लशालई मुदुकुडुमी था। अनेक कविताओं में इसका उल्लेख मिलता है। विजित राज्यों के प्रति वह कठोर नीति अपनाता

था, लेकिन उसने अनेक यज्ञ किए। उसकी उपाधि 'पल्शालै' (अनेक यज्ञशालाएँ बनवाने वाला) थी। पांड्य शासकों में सबसे विख्यात नेडुंजेलियन (210 ई०) था। उसकी प्रसिद्धि तलैयालंगानम् के युद्ध में विजय के परिणामस्वरूप हुई। एक अन्य शासक का भी नाम नेडुजेलियन था जिसनें किसी आर्य सेना को पराजित किया था। तलैयालंगानम् के युद्ध का विजेता नेडुजेलियन युवावस्था में ही गद्दी पर बैठा। इसे अपने दो पड़ोसी राजाओं तथा पाँच सामंतों के संयुक्त विरोध का सामना करना पड़ा। इसमें चेर शासक शेय भी सम्मिलित था। इन सभी को नेडुजेलियन ने परास्त कर अपने राज्य से खदेड़ दिया तथा शेय को बंदी बना लिया। उसने अन्य सामंतों को भी पराजित किया तथा तमिल प्रदेश पर अपनी सत्ता सुदृढ़ की। एक वीर विजेता के अतिरिक्त नेडुजेलियन एक कुशल प्रशासक भी था। इसने सेना का गठन किया तथा किसानों और व्यापारियों के हित में अनेक कार्य किए।

संगम साहित्य से प्रतीत होता है कि तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक इन तीनों राज्यों का वैभव समाप्त हो रहा था। नदत्तनार की कविता **शिरूपान-अरूप्पडई** से ज्ञात होता है कि **नलियकोड्डान** दक्षिण अर्काट जिला में शासन करता था। उसकी तिथि 275 ई० मानी गई है। कवि ने इस बात पर दुख प्रकट किया है कि वंजी, उरूयूर तथा मदुरै तीनों राज्यों की राजधानियों में दानशील शासकों का युग समाप्त हो चुका था तथा विद्या और कला को संरक्षण देने वाला कोई नहीं था। इस विवरण से संगमयुगीन त्रिराज्यों के पतन का आभास मिलता है।

3.3. प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था *(Adminstrative & Cultural Set Up)*

संगमयुगीन प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था की अपनी विशेषताएँ थीं। संगम साहित्य से हमें इसके विविध पक्षों का ज्ञान होता है।

3.3(a). प्रशासन *(Administration)*

संगम साहित्य में राजतंत्रात्मक व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। चेर, चोल और पांड्य तीनों राज्यों में राजतंत्रात्मक व्यवस्था ही प्रचलित थी। तीनों राज्य राज्यतंत्रात्मक होते हुए भी एक प्रकार के कुल संघ प्रतीत होते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था में राजा के कुल या वंश से संबद्ध वयस्क पुरुष राजकार्य में भाग लिया करते थे। अनेक कविताओं में राजा के साथ उसके अन्य संबंधियों के शासन का भी उल्लेख मिलता है। राजा का पद वंशानुगत होता था। पुरुष ही राजा बनता था। संगम साहित्य में किसी महिला शासिका का उल्लेख नहीं मिलता। राजपद वंशानुगत होते हुए भी कभी-कभी विवाद का कारण बन जाता था। इस पद को प्राप्त करने के लिए उत्तराधिकार-युद्ध भी होता था। चोल राजवंश में उत्तराधिकार-युद्ध और इसमें चेर राजा द्वारा हस्तक्षेप किए जाने का उल्लेख मिलता है। राजा की प्रशासन और समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। राजा सिर्फ युद्ध और सरकार का ही नेतृत्व नहीं करता था, बल्कि उसे समाज में भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। सिद्धांततः राजा सर्वशक्तिमान और निरंकुश था। उसकी सत्ता पर कोई वैधानिक नियंत्रण नहीं था, परंतु व्यवहार में राजा स्वेच्छाचारी नहीं होता था। परंपराओं, ब्राह्मणों, मंत्रियों, विद्वानों तथा मित्रों की सलाहानुसार वह अपने कार्यों को संपादित करता था। प्रजा राजा को अपना आदर्श मानती थी। इसलिए राजा उनके सामने एक उच्च आदर्श प्रस्तुत करता था जिसका अनुकरण वे कर सकें। प्रजा राजा से अपेक्षा करती थी कि वह उन्हें सुरक्षा प्रदान करेगा तथा कला, साहित्य और धर्म को संरक्षण प्रदान करेगा। वस्तुतः राजा प्रजा के लिए प्राण स्वरूप था। राजा सामान्यतः एक विजिग्शु (विजेता) राजा के आदर्शों का अनुकरण करते थे। प्रत्येक राजा सात राजाओं को परास्त कर उनके मुकटों की माला पहन कर अपनी स्थिति ऊँची करना और अधिराज की स्थिति प्राप्त करना चाहता था। चक्रवर्ती राजा के लिए दिग्विजयी होना आवश्यक था। **पुरनानरू** में ऐसे चक्रवर्ती राजा का आदर्श मिलता है।

राजा के प्रमुख सहायकों में ब्राह्मणों एवं मंत्रियों को स्थान दिया गया था। राजा अपने दैनिक कार्य-कलापों तथा धार्मिक कृत्यों के लिए योग्य ब्राह्मणों पर आश्रित रहता था। ब्राह्मण राजा की निरंकुशता को भी नियंत्रित करते थे। राजा की एक परिषद भी होती थी जो महत्त्वपूर्ण विषयों पर राजा को सलाह देती थी। इसके गठन का पूरा ब्योरा नहीं मिलता, परंतु इसमें

संभवतः राजकुल के सदस्य, सामंत, पुरोहित, ज्योतिषी और वैद्य को स्थान दिया गया था। राजधानी में एक **सभा** भी होती थी जो सर्वोच्च न्यायालय होने के अतिरिक्त राजा को प्रशासनिक विषय पर परामर्श देती थी। गाँवों में **मन्रम्** नाम की संस्था होती थी जो गाँवों से संबद्ध समस्याओं पर विचार करती थी। इसकी बैठक सामान्यतः गाँव में पेड़ के नीचे होती थी।

न्याय व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। वह सभा की सहायता से न्याय का कार्य देखता था। सभा के सदस्यों (सभासदों) से अपेक्षा की जाती थी कि वे न्याय कार्य के संपादन में निष्पक्षता बरतें। सभा में दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के मुदकमे आते थे। अपराधों पर नियंत्रण करने के उद्देश्य से अपराधियों को कठोर शारीरिक दंड दिये जाते थे। मृत्युदंड के अतिरिक्त गंभीर अपराधों के लिए अंग-भंग की सजा दी जाती थी। राज्य बंदीगृहों का भी निर्माण करता था। एक विद्वान के अनुसार, "संगमयुगीन दक्षिण भारतीय दंड व्यवस्था पुरातन पश्चिमी दुनियाँ की मेसोपोटामिन तथा ईरानी एवं हित्ती सभ्यताओं में विद्यमान दंड की कठोरता समुस्थापित करता है।"

सुदूर दक्षिण के तीनों राज्यों ने सैन्य व्यवस्था पर पर्याप्त बल दिया। प्रत्येक राजा पेशेवर सैनिक एवं सुसज्जित सेना रखता था। सेना का प्रधान सेनापति या **इनाडी** के नाम से जाना जाता था। उत्तर भारत के समान दक्षिणी राज्यों में भी चतुरंगिणी सेना (पैदल, रथ, हाथी, घोड़ा) रखने की परिपाटी थी, परंतु रथों में घोड़ों के स्थान पर बैल लगाए जाते थे। नौसैनिक अभियानों के उल्लेख से पता लगता है कि कुछ राजाओं के पास नौसेना भी थी। **कलावली** में सैनिकों की वेश-भूषा, अस्त्र-शस्त्र एवं युद्ध की स्थिति का विवरण मिलता है। युद्ध के प्रमुख अस्त्र-शस्त्र तलवार, धनुष-वाण, बर्छे, भाले, बाघ के चमड़े का कवच तथा ढाल थे। सैनिक चमड़े के बने जूते पहनते थे। कभी-कभी स्त्रियाँ भी युद्ध में अपने पतियों के साथ जाती थीं। युद्ध के लिए सैनिकों का आह्वान शंख और नगाड़ा बजा कर किया जाता था। प्रत्येक राजा और सेनानायक का नगाड़ा होता था जिसकी पूजा की जाती थी। सैनिक शिविरों के निर्माण एवं रख-रखाव पर ध्यान दिया जाता था। शिविर बहुत विस्तृत होते थे। राजा की सुरक्षा शस्त्रधारी महिलाएँ करती थीं। शिविरों में समय की सूचना जलघड़ी देखकर की जाती थी। युद्ध में मृत्यु प्राप्त करना गौरव की बात मानी जाती थी। ऐसी धारणा थी कि युद्ध में मृत योद्धा को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। मृत योद्धाओं के सम्मान में स्मृतिपत्थर लगा कर उनकी पूजा की जाती थी। राजकुल और सरदारों के परिवारों में शांतिपूर्ण मौत घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। वैसे व्यक्ति जो युद्ध क्षेत्र के बाहर मृत्यु को प्राप्त करते थे उनके शरीर पर तलवार से प्रहार कर उनके लिए स्वर्ग की कामना की जाती थी। यह प्रथा **वीरस्वर्ग** के नाम से जानी जाती थी। राजा स्वयं भी युद्ध में भाग लेता था। पराजित शासक को अपमान का सामना करना पड़ता था। युद्ध भयानक होते थे। इसमें शत्रु देश को उजाड़ दिया जाता था तथा खड़ी फसल नष्ट कर दी जाती थी।

राज्य की आमदनी का मुख्य स्रोत भूमिकर तथा व्यापार से प्राप्त होनेवाली आय थी। राज्य का अस्तित्व कृषि पर ही आधारित था। प्रजा यह मानती थी कि योग्य राजा विभिन्न ऋतुओं पर नियंत्रण रखकर कृषि के विकास में सहायता पहुँचाता है। राज्य कृषकों से उपज का कितना भाग लेता था यह स्पष्ट नहीं है। भू-स्वामित्व की भी स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है। लगान नकद और वस्तु दोनों रूप में लिया जाता था। राज्य को व्यापार, सीमा शुल्क तथा चुंगी से भी आमदनी होती थी। युद्ध में लूट की संपत्ति भी आय का एक साधन थी। राजस्व का एक बड़ा भाग सेना पर खर्च होता था। ललित कलाओं के विकास पर भी धन खर्च किया जाता था। अनेक राजा कवियों एवं विद्वानों को पारितोषिक और पुरस्कार देते थे। कहा जाता है कि चोल राजा करिकाल ने **पट्टिनपालै** के रचयिता को 16,00,000 स्वर्णमुद्राएँ प्रदान कीं।

संगमकालीन राजतंत्र में जनजातीय तत्त्वों का अनेक प्रभाव देखाजाता है। 'वेत्थी' अथवा गोहरण की प्रथा मरवा नामक जातियों में प्रचलित थी। पशुओं की चोरी और लूट कभी-कभी युद्ध का कारण बन जाती थीं। कबीले का नेता अपने स्वामी और गाँववालों के लिए युद्ध करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। संगम साहित्य के विवरण से ज्ञात होता है कि दक्षिण के "राज्यों के अंतर्गत जिस सामाजिक ढाँचे में ब्राह्मण संस्कृति की नैतिकता तथा उच्च आदर्श

स्थापित थे उसी में जनजातीय रीति-रिवाज तथा जीवन-मूल्य भी प्रतिष्ठित थे। इनमें प्रचलित युद्ध के तरीकों, नायकों की परिकल्पना, शूरवीरता संबंधी उनकी मर्यादा, मृत नायकों के सम्मान में पाषाण प्रतिमाओं की स्थापना, उनमें गोमांसहार की परंपरा आदि की तात्कालिक जीवन पर गहरी छाप है। मूलरूप से सैनिक महत्त्व के कारण जन-जातीय लोगों ने संगम काल के राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन को अनेक ढंगों से प्रभावित किया।''

3.3(b). सांस्कृतिक जीवन *(Cultural Life)*

संगमयुगीन सांस्कृतिक जीवन की प्रमुख विशेषता है आर्य तथा आर्येत्तर सांस्कृतिक तत्त्वों का समन्वय। दक्षिण की संस्कृति में उत्तर भारत की संस्कृति के अनेक तत्त्व पाए जाते हैं। उदाहरणस्वरूप **रामायण** और **महाभारत** की कथाएँ इस युग में दक्षिण में प्रचलित थीं। तमिल राजाओं द्वारा महाभारत के सैनिकों को भोजन कराने, शिव द्वारा त्रिपुर का विध्वंस, शिवि की कथा, कृष्ण और असुरों का युद्ध, अरुंधति की पतिव्रता स्त्री के रूप में कल्पना, ऋणत्रय की अवधारणा, विवाह के प्रकार इत्यादि में उत्तर भारतीय संस्कृति का प्रभाव संगम साहित्य में स्पष्ट तौर पर दृष्टिगोचर होता है।

सामाजिक जीवन—सामाजिक संगठन पर आर्यों की वर्णव्यवस्था का प्रभाव दिखाई देता है। **पुरूत्रानुरु** में चार जातियों ('कुडि') का उल्लेख मिलता है। ये थे **तुडियन, पाणन, परैयम** तथा **कडम्बन**। इनकी पहचान आर्यों के चार वर्णों से की जा सकती है। मोटे तौर पर संगम समाज चार वर्गों में विभक्त दिखाई देता है—ब्राह्मण, शासक, वणिक तथा कृषक। इनके अतिरिक्त कुछ व्यावसायिक वर्गों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे, **वेलालार** (कृषक), **पुलैयन** (रस्सी बुननेवाले), **चरवाहे, मलवर** (डकैती करनेवाले), **एनियर** (शिकारी), **पेशेवर सैनिक** इत्यादि। राजा और शासक वर्ग समाज के भी नेता थे। वे कला-कौशल को संरक्षण देते थे। उनका खाली समय मद्यपान और स्त्रियों की संगत तथा नृत्य-गान देखने में व्यतीत होता था। समाज में ब्राह्मणों की यथेष्ट प्रतिष्ठा थी। राजा उन्हें संरक्षण और सम्मान प्रदान करते थे। धार्मिक कृत्यों, यज्ञों के संपादन के अतिरिक्त ब्राह्मण राजा के दरबार में सलाहकार और कवि के रूप में रहते थे। राज्य उन्हें स्वर्णमुद्राएँ, हाथी-घोड़े, रथ और भूमि भी दान में देता था। ब्राह्मण मांसभक्षण और ताड़ी पीने के अभ्यस्त थे। कृषि में लगे हुए व्यक्ति **वेलालार** के नाम से जाने जाते थे। राज्य की अधिकांश भूमि पर इन्हीं का अधिकार था। इनका प्रमुख **वेलिर** कहा जाता था। अधिकांश कृषि योग्य भूमि इन्हीं के अधिकार में थी। इन लोगों ने कृषि में नई तकनीकों, सिंचाई एवं लोहे के औजारों का उपयोग कर कृषि को बढ़ावा दिया। वेलालार की दो श्रेणियाँ थीं। जो धनी या सामंत सदृश थे उनका समाज में सम्मानजनक स्थान था। उन्हें नागरिक एवं सैनिक पद दिए जाते थे। वे राजा के साथ युद्ध, शिकार और भोजन में भाग लेते थे। राजपरिवार से वे वैवाहिक संबंध भी रखते थे। वे अपनी खेती स्वयं नहीं करते थे बल्कि मजदूरों से करवाते थे। गरीब वेलालारों की स्थिति दयनीय थी। वे अपना खेत स्वयं जोतते थे। उनकी स्थिति भूमिहीन कृषक मजदूर सदृश थी। समाज में वणिकों या व्यापारियों की स्थिति अच्छी थी। उनके पास धन और सम्मान था। विदेशी व्यापार के कारण बंदरगाहों में बड़ी संख्या में विदेशी या यवन रहते थे। मदुरा में उन्हें महलों के रक्षक तथा पुलिसकर्मी के रूप में नियुक्त किया जाता था।

धनी वर्गों का जीवन सुख सुविधापूर्ण था। उच्चवर्गवाले ईंट और चूने के बने मकानों में रहते थे। इनकी दीवारों को सुरुचिपूर्ण ढंग से देवताओं तथा पशुओं के चित्रों से सुसज्जित किया जाता था। मकान के चारों ओर सुंदर फल-फूल से सजे बाग, फव्वारे, कुँए, ताल... बनवाए जाते थे। इसके विपरीत निर्धनों का आवास सादा होता था। वे झोपड़ियों में निवास करते थे जिनमें मछली पकड़ने के बाँस भालों के समान लटकते रहते थे। उनकी झोपड़ियों के बाहर रेत पर मछली पकड़ने के जाल सूखते रहते थे। आर्थिक विषमता के बावजूद दोनों वर्ग मिल-जुलकर रहते थे। इस विषमता के विरुद्ध विरोध करने की प्रवृत्ति संगम साहित्य में दिखाई नहीं देती है।

समाज में स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ ललितकला की शिक्षा पाती थीं। कुछ स्त्रियों ने कविताएँ भी लिखीं। युवा स्त्रियाँ एवं लड़कियाँ पिकनिक,

युगलस्नान, खेल-कूद में भाग लेती थीं। **तोलकाप्पियम** के अनुसार विवाह को एक संस्कार का दर्जा दिया गया था। आर्यों में प्रचलित आठ प्रकारों के विवाह से मिलते-जुलते विवाह तमिल प्रदेश में भी प्रचलित थे। समाज में विधवाओं का जीवन कष्टपूर्ण था। जिन स्त्रियों के पतियों की मृत्यु युद्ध में हो जाती थी वे हरी सब्जी, पान खाना, ठंढे पानी से नहाना छोड़ देती थीं। विधवाएँ अपना बाल मुड़वा लेती थीं तथा आभूषण पहनना छोड़ देती थीं। कुछ स्त्रियाँ सती प्रथा का भी पालन करती थीं तथापि उन्हें सती होने के लिए बाध्य नहीं किया जाता था। पतिव्रता स्त्रियों का समाज में सम्मान था। आदर्श पत्नी की तुलना कण्णगी से की जाती थी। व्याभिचारिणी स्त्री को पाप से मुक्ति दिलाने के लिए कन्याकुमारी में स्नान करवाया जाता था। समाज में गणिकाओं और वेश्याओं का भी एक वर्ग था। गणिकाओं के संबंध में **मणिमेकलै** का विवरण वात्सयायन के **कामूसत्र** से मिलता-जुलता है। उन्हें नृत्य-संगीत और विभिन्न ललितकलाओं की शिक्षा देकर निपुण बनाया जाता था। गणिकाओं से पारिवारिक जीवन और पत्नी को खतरा रहता था। **शिलप्पदिकारम्** में कोवलन, कण्णगी और गणिका माधवी की कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है। जो वेश्याएँ अपने पेशे के विरुद्ध कार्य करती थीं उन्हें दंडस्वरूप अपने सिर पर सात ईंटें रखकर सार्वजनिक रंगमंच के चारों ओर परिक्रमा करनी पड़ती थी। अनेक नर्तकियाँ राजदरबार से संबद्ध थीं। कुछ गायकों के साथ एक जगह से दूसरी जगह घूमा करती थीं।

तमिलवासी सुंदर वस्त्र एवं आभूषण पहनते थे। आभूषणों में प्रमुख थे कान की बाली, अँगूठी, हार, कमरधनी इत्यादि। रेशमी और सूती वस्त्र पहने जाते थे। उच्च वर्गों में उत्तम प्रकार के चावल और दूध का बना **आप्पम** प्रिय भोजन था। घी और दही भी प्रचलित था। भेंड़ का नरम मांस, कछुआ और सूअर का मांस तथा विभिन्न प्रकार की मछलियाँ भोज में पकाई जाती थीं। पुरुष-स्त्री दोनों मद्यपान करते थे। हरी बोतलों में बंद विदेशी शराब, **मुन्निर** अथवा अधपके नारियल के दूध, ताड़ी और गन्ने के रस से बनाई गई शराब अत्यंत प्रिय थी। ताड़ी को अधिक नशीला बनाने के लिए बाँस के पीपों में जमीन के नीचे दबाकर लंबे समय तक रखा जाता था। मनोरंजन के साधनों में कुत्तों और खरहों का शिकार, मल्ल-युद्ध और मुष्टिका-युद्ध, पासा खेलना, पिकनिक मनाना, जल-क्रीड़ा करना, साथ-साथ स्नान करना प्रमुख थे। नृत्य और संगीत भी मनोरंजन के साधन थे। वाद्य यंत्रों में प्रमुख **याल** और **नगाड़े** थे। स्त्री-पुरुष एक साथ मिल कर नृत्य करते थे। **शिलप्पदिकारम्** में नृत्य की **देशी** (आर्येत्तर) और **मार्ग** (आर्य) शैलियों का उल्लेख मिलता है। समाज में अनेक प्रकार के अंधविश्वास भी प्रचलित थे। शकुन और नक्षत्रों की गतिविधियों में विश्वास किया जाता था। भविष्यवक्ताओं की समाज में माँग थी। भविष्य बताकर वे बहुत अधिक धन कमाते थे। बुरी शक्तियों से बचाव के लिए बच्चों को ताबीज पहनाए जाते थे। बाल-मुड़े हुए स्त्री का दर्शन अशुभ माना जाता था। नजर लगने से बचाव के लिए बच्चों के बालों में घी और सफेद सरसों का तेल लगाया जाता था। बरगद के वृक्ष को देवता का आवास माना जाता था। ग्रहण का कारण साँप द्वारा सूर्य और चंद्रमा को निगलना माना जाता था। कौवे की बोली से अतिथियों तथा विरहिणी पतियों के आगमन की सूचना पाते थे। इसलिए कौवों को दाना खिलाया जाता था। आँख फड़कने से अपशकुन का बोध होता था। मृतक संस्कार की विभिन्न परिपाटियाँ प्रचलित थीं। दाह-संस्कार और अस्थि कलशों के साथ या उनके बिना भी दफनाए जाने का उल्लेख मिलता है। **मणिमेकलै** में मृतकों के सम्मान में ईंटों की समाधियाँ बनाने का उल्लेख मिलता है। संगम साहित्य में वर्णित सामाजिक जीवन में आर्य और आर्येत्तर संस्कृति के तत्त्वों का अनूठा समन्वय देखा जा सकता है।

3.3(c). आर्थिक व्यवस्था *(Economic Life)*

संगम साहित्य से उस युग की आर्थिक समृद्धि का बोध होता है। अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि और व्यापार थे। साथ ही पशुपालन और उद्योगों का भी विकास हुआ।

तमिल अर्थव्यवस्था में कृषि को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया था। राज्य की कृषि में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। प्रदेश की भूमि उपजाऊ होने से फसल भरपूर होती थी। अतः अनाज

की कमी नहीं थी। मांस-मछली, फल, सब्जी भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। चेर राज्य अपने भैंसों, कटहल, काली मिर्च तथा हल्दी के लिए विख्यात था। चोल राज्य में कावेरी नदी से सिंचाई में सुविधा होती थी। कहा जाता है कि इस राज्य में एक हाथी जितनी जगह में बैठता था उतने में ही सात व्यक्तियों के लिए पर्याप्त अनाज पैदा होता था। एक **वेली** जमीन में करीब एक हजार **कलाम** धान पैदा होती थी। यहाँ तक कि पारी नामक छोटे से राज्य के जंगलों में भी पर्याप्त मात्रा में एक प्रकार का धान (bamboo-rice), कटहल, **वली** नामक कंद और मधु होता था। **रागी** और गन्ना की खेती, गन्ना से ईख बनाने की प्रक्रिया, फसलों के काटने और अनाज को सुखाने जैसी प्रक्रिया का वर्णन संगम कविताओं में मिलता है। मसालों की खेती भी बड़े पैमाने पर होती थी जिसका निर्यात किया जाता था। खेतों की सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी। बड़े किसानों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी, परंतु कृषि दासों की स्थिति दयनीय प्रतीत होती है। कृषिकर्म में निम्नवर्ग की स्त्रियाँ **(कदैसियर)** भाग लेती थीं। कृषि के सहायक उद्योग के रूप में पशुपालन का भी विकास हुआ। चरवाहों का एक अलग वर्ग ही था। शिकारियों और मछुआरों की भी आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

संगम युग में विभिन्न उद्योगों एवं शिल्पों का भी विकास हुआ। वस्त्र उद्योग उन्नत स्थिति में था। सूती और रेशमी दोनों प्रकार के वस्त्र तैयार किए जाते थे। सूत कातने और वस्त्र बुनने का काम सामान्यतः स्त्रियाँ करती थी। वस्त्रों पर सुंदर डिजाईन बनाए जाते थे। उरैयुर सूती वस्त्र एवं सूत का एक विख्यात केंद्र था। अनेक कविताओं में साँप के केंचुल के समान पतले और धवल वस्त्र बुने जाने का उल्लेख मिलता है। वस्त्रों की सिलाई-कटाई भी होती थी। हाथी दाँत का सामान तैयार करने तथा सोना-चाँदी और बहुमूल्य रत्नों से आभूषण बनाने का उद्योग भी समुन्नत स्थिति में था। समुद्र से मोती निकालने और नाव तथा जहाज बनाने का उद्योग प्रगति पर था। इनके अतिरिक्त मिट्टी और धातु के बर्तन बनाने, लोहे के औजार और उपकरण बनाने तथा नमक बनाने का व्यवसाय भी प्रचलित था।

संगम युगीन समृद्धि का मुख्य कारण आंतरिक और विदेशी व्यापार का विकास था। व्यापारी तमिल प्रदेश में एक स्थान से दूसरे स्थान तक गाड़ियों में सामान भरकर और मालवाहक पशुओं पर लाद कर कारवाँ या समूह में भ्रमण करते थे। आंतरिक व्यापार की एक मुख्य वस्तु नमक थी। नमक के व्यापारी गाड़ियों में अपने परिवार के साथ भ्रमण करते थे। इसके अतिरिक्त आंतरिक व्यापार अनाज, मसालों, मछली, कपड़े, जड़ी-बूटी, तेल, घी, गन्ना इत्यादि का होता था। संभवतः आंतरिक व्यापार विनिमय के आधार पर होता था। उदाहण के लिए मुसिरी में धान के बदले मछली के विनिमय का उल्लेख मिला है। इसी प्रकार जड़ी-बूटी, मछली के तेल, ताड़ी, गन्ना इत्यादि के अदला-बदली का उल्लेख मिलता है।

विदेशी व्यापार सामुद्रिक मार्ग द्वारा होता था। संगम साहित्य में अनेक बंदरगाहों और उनकी संपन्नता का उल्लेख मिलता है। पुहार (कावेरीपत्तनम्) का बंदरगाह चोलों के अधीन व्यापार का एक प्रमुख केंद्र था जहाँ बड़े-बड़े विदेशी जहाज सोना और सामान भर कर लाते थे तथा यहाँ से सामान ले जाते थे। पुहार में विभिन्न प्रकार के बाजार भी बस गए थे। पुहार नगर की समृद्धि का वर्णन **शिलप्पदिकारम्** में किया गया है। जहाजों पर झंडे लगे रहते थे। जहाजों के मार्गदर्शन के लिए समुद्र के किनारे पर प्रकाश स्तंभ बनाए गए थे। पांड्य राज्य में शालियूर तथा चेर राज्य में बंदर प्रमुख बंदरगाह थे। **पेरिप्लस** नामक ग्रंथ से भी इस काल के विदेशी व्यापार पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इस ग्रंथ के अनुसार भारत तथा रोमन साम्राज्य के मध्य व्यापार उन्नत स्थिति में था। नौरा (कैन्नानोर), तोण्डी (पोन्नानी), मुसिरी और नेलिसंडा पश्चिमी तट के प्रमुख बंदरगाह थे। भारत से काली मिर्च और अन्य प्रकार के मसाले, हाथीदाँत, मोती, मलमल, रेशमी वस्त्र, बहुमूल्य रत्न, हीरे, नीलम इत्यादि वस्तुओं का निर्यात किया जाता था। इनके बदले भारत विदेशों से शराब, रोम के बने बर्तन, रत्न, कपड़े और सोना का आयात करता था। हिप्पालस द्वारा मौनसून की खोज के बाद रोमन जगत से व्यापार का अधिक विकास हुआ। मलय प्रायद्वीप से भी व्यापारिक संबंध था। संगम साहित्य में विदेशी व्यापार का जो विवरण मिलता है उसकी पुष्टि के पुरातात्त्विक साक्ष्य दक्षिण भारत से उपलब्ध हुए हैं। करूर, उरैयुर, कावेरीपत्तनम्, कांचीपुरम्, अरिकामेडु एवं अन्य स्थलों से हुए उत्खननों से रोमन सिक्के

और बर्तन बड़ी संख्या में मिले हैं। विदेशी व्यापार से भारत को अधिक लाभ हुआ। यहाँ प्रचुर मात्रा में सोना आया। तीसरी शताब्दी के उतरार्द्ध से रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार में गिरावट आई जिसके परिणामस्वरूप तमिल प्रदेश की संपन्नता प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई।

3.3(d). धार्मिक स्थिति *(Religious Life)*

संगम साहित्य में वर्णित धार्मिक जीवन की विवेचना से दक्षिण भारत में आर्यों के धार्मिक जीवन का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। इस काल के धार्मिक जीवन में तमिलों की प्राचीन मान्यताओं के अतिरिक्त आर्यों के धार्मिक विश्वास का समन्वय दिखाई देता है। तमिल प्रदेश में भी ऋषि अगस्त्य और कौडिण्य का पर्याप्त प्रभाव था। दक्षिण में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में इन दोनों की प्रमुख भूमिका थी। अगस्तेश्वर के मंदिर दक्षिण भारत में स्थापित किए गए। अगस्त्य से संबद्ध अनेक पौराणिक आख्यान दक्षिण भारत में प्रचलित थे। पांड्य राजवंश के पुरोहित अगस्त्यगोत्री ब्राह्मण होते थे। कौडिण्यगोत्री ब्राह्मणों की भी प्रतिष्ठा थी। उन्हें प्रचुर मात्रा में दान-दक्षिणा दी जाती थी। वैदिक धर्म की प्रधानता के कारण समाज और प्रशासन में ब्राह्मणों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। राजा और सामंत यज्ञ किया करते थे। संस्कारों के पालन पर बल दिया जाता था। **मुरुगन** या **सुब्रमण्य** की पूजा प्रचलित थी। उसकी तुलना स्कंद-कार्तिकेय से की गई। इस देवता का प्रमुख अस्त्र बर्छा था। उसका प्रतिनिधि कुक्कुट या मुर्गा माना गया। मुरुगन की पूजा विभिन्न मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए की जाती थी।

मुरुगन के अतिरिक्त शिव, बलराम, विष्णु, विष्णु के अनंतशैयायी रूप तथा शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की उपासना भी प्रचलित थी। **पदरुप्पत्तु** में विष्णु की पूजा में तुलसी और घंटी के उपयोग की चर्चा की गई है। इन प्रमुख देवताओं के अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर अनेक ग्राम देवताओं की पूजा भी प्रचलित थी। विशिष्ट अवसरों पर इंद्र की भी पूजा की जाती थी। **मणिमेकलै** में सरस्वती के मंदिर एवं कापालिकों का भी उल्लेख किया गया है। इससे पता चलता है कि सरस्वती की पूजा की जाती थी तथा शैव मतावलंबी विभिन्न, संप्रदायों में बँटे हुए थे। कृष्ण की पूजा भी प्रचलित थी। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नृत्य-संगीत का सहारा लिया जाता था। विभिन्न यज्ञों का प्रचलन था। पशु-बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। देवताओं के निवास के लिए मंदिर बनाए जाते थे। स्त्रियाँ बच्चों के साथ मंदिर में उपासना करने जाती थीं। व्रत और उपवास रखने की भी परिपाटी थी। संन्यासियों, विशेषतया त्रिदंडी संन्यासियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। तमिलों की पुनर्जन्म, कर्मप्रतिफल तथा भाग्य में धारणा थी। भाग्य से निराश होकर अथवा संसार से विरक्त होकर संन्यासी बनने की अनेक कथाएँ संगम साहित्य में मिलती हैं। यद्यपि वैदिक धर्म इस समय प्रमुख धर्म था, लेकिन मौर्यकाल तक तमिल प्रदेश में जैन और बौद्ध धर्मों का प्रभाव भी स्थापित हो चुका था। **शिलप्पदिकारम्** एवं **मणिमेकलै** में जैन और बौद्ध धर्म का उल्लेख मिलता है।

3.3(e). कला एवं स्थापत्य *(Art and Architecture)*

संगम साहित्य से तमिल प्रदेश में कला एवं स्थापत्य के विकास के विषय में भी कुछ जानकारी मिलती है। धनी वर्गों के घर ईंट और चूने से बनाए जाते थे, जबकि निर्धन वर्ग फूस की झोंपड़ियों में रहता था। दीवारों पर सुंदर भित्ति चित्र बनाए जाते थे। नगर-निर्माण सुनियोजित ढंग से होता था। नगर-निर्माण की प्रचलित परंपराओं का पालन किया जाता था। नगरों की सुरक्षा के लिए प्राचीर का निर्माण किया जाता था। उनके चारों ओर गहरी खाइयाँ खोदी जाती थीं। पुहार नगर का विशद् वर्णन संगम साहित्य में मिलता है। नगर दो भागों में बसा हुआ था। समुद्रतटीय भाग में व्यापारियों, कारीगरों तथा यवनों की बस्तियाँ, दुकानें एवं बाजारें थीं। नगर के भीतरी भाग में सुंदर, आलीशान, उद्यानों से घिरे महल सदृश मकान थे। वातायनों, शयनागारों, गलियारों, तोरण द्वारों के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाता था। मंदिर एवं बलि-वेदियाँ भी बनाई जाती थीं। ललित कलाओं और दस्तकारी के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। इस प्रकार संगम साहित्य सुदूर दक्षिण के आरंभिक इतिहास और संस्कृति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है।

□ □ □